● *प्रो. रवींद्रनाथ मिश्र*

बोधिसत्व की आंचलिक काव्य संवेदना

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत कुछ तेजी से बदल रहा था, फिर भी बोधिसत्व का तन-मन अपने गाँव और कुरुबजवार की गलियों, खेत-खलिहानों आदि के बीच भटकता रहा। कवि मुंबई प्रवास के दौरान भी अपने माई, बाबू, काका-काकी, रमा की माई, धनियां, शिवानी, साथ की लड़कियां, मजदूरा औरतें, सुख्खू मुसहर, बुद्धू आदि के साथ बीती जिन्दगी के लम्हों को नहीं भूला। बोधिसत्व युगपुरुष कवि निराला और लोकमाटी के कवि नागार्जुन को क्रमशः सुमिरन करते हुए 'सिर्फ़ कवि नहीं' (1991) शीर्षक काव्यसंग्रह से काव्यजीवन का प्रारंभ करते हैं। तुम्हारी आँखों में/मधुर आंच में क्या सिझ रहा है/जैसे कविता.../जैसे बहुत कुछ।' और अंत में 'ओ मेरे पुरनियां!/तुम्हारी आँखों में/क्या सिझ रहा है/मेरे लिए–उनके लिए/कविता.../और बहुत कुछ। तथा 'बाबा नागार्जुन!/तुम पटने, बनारस, दिल्ली में/खोजते हो क्या/दाढ़ी-सिर खुजाते/कब तक होगा हमारा गुजर-बसर/टुटही मंडई में ऐसे/लाई-नून चबा के। कविता में पुरनियां, सिझना, बुजरुक, उजबक-चतुर आदि शब्द हमारी लोकसंवेदना को झकझोर कर रख देते हैं।

उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल भूभाग के भिखारी रामपुर गाँव और भदोही जनपद की माटी में 11 दिसंबर 1968 में जन्मे अखिलेश मिश्र अपने कवि-जीवन में बोधिसत्व हो गए। वे प्रारंभिक शिक्षा गाँव में प्राप्त कर उच्च शिक्षा हेतु इलाहाबाद गए और वहीं से स्नातकोत्तर और पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की। कुछ समय तक इलाहाबाद में यहाँ-वहाँ नौकरी करने के बाद बोधिसत्व मन में अपने गाँव को लेकर तन से महानगरी मुंबई में आ गए। इसका प्रमाण उनकी 'सिर्फ़ कवि नहीं' पहले और दूसरे काव्यसंग्रह 'हम जो नदियों का संगम हैं' (2000) की कविताएँ हैं। 1999 में रचित 'पागलदास' कविता के लिए बोधिसत्व को वर्ष 2000 में भारतभूषण अग्रवाल स्मृति पुरस्कार प्राप्त हुआ। इसी वर्ष इन्हें संस्कृति सम्मान एवं 2001 और 2002 में क्रमशः हेमन्त स्मृति और गिरिजाकुमार माथुर स्मृति सम्मान से नवाजा गया। 'दुःख-तत्र' नाम से इनका तीसरा काव्यसंग्रह 2004 में आया। महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में रिसर्च

असिस्टेंट के रूप में हिंदी लेखकों की पाण्डुलिपियों की खोज का कार्य तीन वर्ष करने के पश्चात् कालान्तर में वे स्वतंत्र लेखन का कार्य करने लगे।

बोधिसत्व की पहली पहचान लोकजीवन के कवि के रूप में बनती है। कवि अपने कवित्व का ढिंढोरा नहीं पीटता और न ही यह मानकर चलता है कि मैं बहुत बड़ा कवि हूँ। वे बाबा तुलसी की 'कवि विवेक एक नहिं मोरे' की पंक्ति को अपने ऊपर लागू करते हैं। 'कविता समाज के हारे-गाढे काम दे' शीर्षक आत्मकथ्य में उन्होंने लिखा है—''मेरे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वह बिंदु है, जिसमें एक कविता आती है, वह कवि से कहती नहीं है कि मुझे लिखो, दर्ज करो। यह कवि की सेंसिटीविटी पर होता है कि वह सूक्ष्म तरंगों को पकड़े, उसकी नोटिस ले। दरअसल कविता लिखे जाने के पहले कहीं नहीं होती, वह कौंधती, लुप्त होती रहती है।...मैं अपनी प्रत्येक कविता में किसी को संबोधित होता हूँ, बात करता हूँ। जिससे बात करता हूँ उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक जीवन को ध्यान में रखकर अपनी कविता की भाषा, बिंब, प्रतीक आदि का चयन करता हूँ। मेरी कविता में मेरी बोली, 'अवधी' के शब्द इसीलिए बे-रोकटोक आते हैं, क्योंकि मेरी प्रायः सभी कविताएँ इसी बोली क्षेत्र के लोगों के लिए लिखी गई हैं।

कवि के प्रथम काव्यसंग्रह 'सिर्फ़ कवि नहीं' की अधिकांश कविताएँ लोक संवेदनाओं पर आधारित हैं। निराला और नागार्जुन के सुमिरन के बाद 'आसान नहीं है' कविता में कवि स्वयं के व्यक्तित्व को विश्लेषित करता है। उनका कहना है कि मेरे 'जीवन का एक पक्ष ठूंठ जैसा जेठ की गरम लूक और अगहन की पालामार हवा वाला है तो दूसरा पक्ष केले के नरम पत्ता वाला वह भाग है जो कि थोड़ा-सा प्यार-मुहब्बत मिलने पर दही की तरह फट जाता है और बरगद की छाया की तरह सुख भी देता है। 'हमारा सफर' में कवि अपनी मंज़िल तक पहुँचने में भोगे हुए दारुण दुःखों का चित्रण करता है।' इसके अतिरिक्त 'आवाज़', 'चाहता हूँ', 'सुख्खू मुसहर', 'सुनो बुद्धू सुनो', 'मजदूरा औरतें' आदि कविताओं में बोधिसत्व की प्रगतिशील चेतना मुखरित हुई है।

कवि अपनी आवाज़ को धरती की आवाज़ बनाकर जीवन के कुछ ऐसे बुनियादी सवालों की ओर शोषितों एवं दलितों का ध्यान आकर्षित करना चाहता है जिसे पाने के लिए वे वर्षों से चुप हैं। उन्हें बोलने का अवसर दिया ही नहीं गया। उन्होंने यह मान लिया कि बोलने पर नुकसान के सिवा और कुछ होने वाला नहीं है, इसलिए वे चुप्पीवाद के समर्थक हो गए। कवि उन आँखों में अपने को खोजता है जिनकी आँखों में जीवन की कोई आकृति बनी ही नहीं। बोधिसत्व समाज की इस अमानवीय हालत के जिम्मेवार लोगों का मुकाबला करने के लिए मजदूरा औरतों को ललकारते हैं।

हम अपने देश के / रक्तखोरों को
जुबान देते हैं कि / हम लड़े बगैर नहीं मरेंगे

हम अपने बाप के / बुन्द की कसम लेते हैं
कि हर हालत में / धधकाये रखेंगे
मजदूरा औरतों की छाती की आग।

बोधिसत्व पारिवारिक संवेदना और प्रेम के कवि हैं। 'काकी', 'मां को पत्र', 'धनिया से एक सवाल', 'विदा के समय', 'पिता', 'लौट गए पिता', 'बाबू के लिए' आदि कविताएँ जहाँ कवि के खून के रिश्ते की मानवीय संवेदनाओं के मार्मिक भावों को व्यक्त करती हैं वहीं पर 'बो दूं कविता' रति-क्रीड़ा की उद्दाम शृंगारिक भावनाओं को प्रकट करती है। 'तुम मुझे तापो / तुम मुझे छुओ / इतनी छूट दो कि / तुम्हारे बालों में / अंगुलियाँ फेर सकूं / तोड़ सकूं तुम्हारी अंगुलियां / नाप सकूं तुम्हारी पीठ।'

इस संग्रह की अन्य कविताएँ लोकसंस्कृति, देशप्रेम, प्रकृतिप्रेम, ऐतिहासिक चरित्रों, स्त्री-बाल मजदूरों आदि पर केन्द्रित हैं। 'पलामू' कविता में कवि ने भदोही जनपद में बड़े पैमाने पर चल रहे कालीन बनाने वाले कारखानों में कार्य कर रहे बच्चों के जीवन का बड़ा दर्दनाक चित्रण किया है। संसद में बालश्रमिक पर बने कानून पर गहरी चोट की गई है। कवि ने जहाँ 'दिया-बाती', 'टूटी दियली', 'वहाँ औरतें' आदि कविताओं में लोकजीवन का चित्र खींचा है वहीं पर 'यह पृथ्वी', 'सांझ के माथे पर', 'बादल' आदि कविताएँ प्रकृति और जीवन के रिश्तों को एक नया आयाम देती हैं—

वहाँ औरतें बरतन मांजकर / लेउ लगा रही हैं,
वहाँ औरतें धो और सुखा / रही हैं केश, गांछ रही हैं
चोटियां, भर रही हैं पांव / लेप रही हैं दुःख के गलके पर
नोना-माटी / पूछ रही हैं कुसल-क्षेम।

कवि निराला के 'बादल राग' और पंत की 'बादल' कविता की भावभूमि पर आधारित बोधिसत्व की कविता 'बादल' में भी नवीन उद्भावना व्यक्त हुई है—

मेरी गरदा-भरी लटों को / भिंगो दो
मुझे लथेर दो तर-उप्पर / सराबोर हो जाऊं मैं
तुम आओ तो सही एक बार / पूरे पौरुष के साथ
आधी रात के इधर / या उधर।

बोधिसत्व एवं अन्य युवा कवियों की काव्यप्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है—"उग्रता या अराजकता एक दौर में युवा कविता की खास चारित्रिक पहचान थी। आज नहीं है। मार्क्सवाद के लिए आग्रह हो, न हो, कठिन समय की राजनीतिक-सामाजिक-सांस्कृतिक जटिलताओं को समझने की बेचैनी इधर की युवा कविता में दिखाई देती है। विनम्रता और साहस, करुणा और क्षोभ की खास

झलक देने वाली आज की युवा कविता हमारे जीवन के मूल राग या प्रेम के प्रति विरक्त या उदासीन नहीं है।''

सदी की संधि-वेला पर 'हम जो नदियों का संगम हैं' दूसरे काव्यसंग्रह में बोधिसत्व की काव्य-दृष्टि और संवेदना का स्वरूप प्रखर और व्यापक हुआ है। कवि कबीर की 'सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै। दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै॥ और तुलसी की 'भाषाबद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहिं होंहि॥ पंक्तियों के भावों का उल्लेख करते हुए कहता है—''एक कवि को रडार की तरह हमेशा 'ऑन' रहना पड़ता है जो कुछ अनहोना दिखे, अपूर्व दिखे, उसे तत्काल आत्मसात करने के लिए जागता रहे। कबीर का 'जागना' और 'रोना' अपने समाज में रडार की तरह 'ऑन' रहने के कारण था। सूझ रही कविता को कवि काफी सोच-समझ कर चुनता है। मन में उस कविता के 'प्रबोध' होने पर कवि उसे भाषाबद्ध करता है। यह परंपरा कविता में पहले से विद्यमान है। बिना 'आखिन' देखे, बिना 'मन-प्रबोध' के लिखना पहले भी नहीं हुआ।''

संग्रह की प्रारंभिक कविताएँ 'जाता हूँ', 'पूरब-पच्छिम' और 'पागलदास' नए भावबोध की कविताएँ हैं। कवि को प्रवास की आज़ादी, सुख, खुशियाँ आदि रास नहीं आती और न ही पश्चिम की संस्कृति। उसे अपनी माटी और मूल्यों से लगाव है। कवि अयोध्या में 'पागलदास' की तलाश करता है तो उसे 'अंधेरे में' कविता की तरह उसका ही प्रतिरूप मिलता है। ''जो दूसरे पागलदास थे/वे न्याय चाहते थे/चाहते थे रक्षा हो सच की/बची रहे मर्यादा अयोध्या की/सहन नहीं होता था कुछ भी उल्टा-सीधा/क्रोधी थे। पहले पागलदास की तरह/सिर्फ़ अपने भर से नहीं था काम-धाम/पहले पागलदास की तरह उदास होकर/बैठ नहीं गए थे घर के भीतर।''

सदी के अंत में टूटते-बिखरते मानवीय मूल्यों की पीड़ा को कई कवियों ने अभिव्यक्ति दी है। बोधिसत्व की 'पागलदास' कविता अपने समय के विविध कपाटों को खोलती है। नेमिचंद्र जैन ने निर्णायक मत की हैसियत से लिखा है—''अयोध्या के विख्यात पखावज वादक स्वामी पागलदास की मृत्यु से प्रेरित, बोधिसत्व की कविता 'पागलदास' विचलित कर देने वाला काव्यानुभव प्रस्तुत करती है। प्रत्यक्ष रूप में वह सच्चाई, न्याय, मर्यादा जैसे मूल्यों की हत्या रोकने में एक रचनाकार की असहायता से उत्पन्न आत्मविभाजन और हताशा का बयान है। पर वास्तव में उसमें अयोध्या में बाबरी मस्जिद के ध्वंस से जाहिर हमारे समाज में बढ़ती हुई वैचारिक कट्टरता, राजनैतिक निरंकुशता, सिद्धान्तहीनता और पाखंड की बढ़ी सघन, विडंबनापूर्ण और तीखी व्यंजना है।'' आज पता नहीं कितने पागलदास अपनी पखावज बजा-बजा कर समय और समाज से लोहा लेते हुए काल कवलित हो रहे हैं, लेकिन उनकी संगत देने वाला कोई नहीं है।

शैलेन्द्र कुमार त्रिपाठी ने लिखा है—''जैसे अयोध्या में बसती है दूसरी अयोध्या/सरजू में बसती है दूसरी सरजू/वैसे ही पागलदास में था दूसरा पागलदास/और दोनों रहते थे अलग-अलग/उदास बोधिसत्व की कविता 'पागलदास' से यह कुछ पंक्तियाँ साधारण-सी दिखने वाली भाषा का सौन्दर्य बोध उसके कथ्य की बहुस्तरीयता को देखने पर युवा कवि के सामर्थ्य पर सहज विश्वास होता है। समय की त्रासदी को अभिव्यक्ति देती भाषा सीधी-सादी होते हुए भी अर्थगौरव के पद को धारण करती है।''

कवि के पहले संग्रह की रचनाओं में जहाँ समसामयिक घटनाओं और परिवेशगत बदलावों की खरोंच मात्र है वहां इसमें उसकी धार तीव्र हुई है। कवि की पीड़ा 'पागलदास' जैसे मूल्यवान व्यक्तियों को बचाने की है लेकिन विडंबना इस बात की है कि ऐसे लोगों की हत्या रोज हो रही है। निराला, नागार्जुन जैसे कवियों की अगली कड़ी में बोधिसत्व ''मारीकन का कुर्ता पहने लहराता हरदम/मुक्का था, बांची नहीं गयी जो वह पोथी/वह रुक्का था।'' जैसे सहज कवि त्रिलोचन को याद करते हैं।

'दुख-तंत्र' कविता में कवि परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति संवेदनहीन होकर ''जो नहीं है उसका ग़म क्या?/''मसलन आज़ादी, मसलन प्यार...भाईचारा,/जो नहीं है/उसके बारे में सोचना भी क्या/सपने नहीं पालने थे हमें/जैसे-तैसे गुजर जाना था/इस हाहाकार के बीच से।'' जैसी स्थिति में थूक चाटकर भी खुश होकर जीना चाहता है। यह आज की व्यवस्था और इस तरह से मूल्यहीन होकर जीने वालों पर करारा व्यंग्य है। यदि आप संवेदनशील होकर जीना चाहते हैं तो आपको दुखिया दास कबीर बनकर रात-दिन जागना पड़ेगा। लोकतंत्र में 'जो विलाप से विचलित होता है' वह कभी विजेता नहीं हो सकता...। कवि की 'मेले में' और 'शोक मनाने दो' कविता में सत्ताव्यवस्था की क्रूरता को व्यंजित किया गया है। ''मुझे हर उस शिशु का शोक/मनाने दो/जिसकी हत्या पर/जश्न कहीं मनाया गया।'' जैसी पंक्तियाँ निठारी हत्याकाण्ड की याद को सुलगा देती हैं। यहीं पर जहाँ 'गंध' कविता मनुष्य की संकीर्ण सोच का बयान करती है, वहीं पर 'पुराने जैसा' और 'पहचान' कविताएँ क्रमशः बीतती हुई ज़िंदगी और विलुप्त होती हुई भारतीय संस्कृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती हैं।

आज़ादी के बाद प्रांतवाद एवं क्षेत्रीयता की भावना जिस रूप में प्रबल हो रही है, उससे अखण्ड भारत की संकल्पना धूमिल पड़ती जा रही है। कई प्रांतीय पार्टियों का स्थानीय रंग महाराष्ट्र, दक्षिण भारत और पूर्वोत्तर भारत में गहराता जा रहा है। ''मैं पूछ रहा हूँ बार-बार/कि वे मुझे सोते-जागते/बाहरी कह रहे हैं/क्या मैं बाहरी हो जाऊंगा? वे चाहते हैं/मैं अपनी ज़मीन-जायदाद/अपने पुरखों की कब्रें/अपने चौदहवीं के चाँद को/अपनी बोई हुई फसल को और/अपने खून में घुले हुए देश को/छोड़ दूं/और कहूँ/

गंगा मेरी नहीं/यह देश मेरा नहीं/फिर तो/सूर्य की किरनें मेरी नहीं/चौदहवीं का चाँद मेरा नहीं/और/कोई भी कविता मेरी नहीं।''

प्रस्तुत संग्रह की अन्य कविताओं में भी कवि की प्रगतिशील दृष्टि प्रखर होती गई है। वह गाँव की गलियों को छोड़कर विशाल मैदान की तरफ आ गया है। यहाँ उसकी संवेदना का स्वरूप व्यापक हुआ है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की जूता—1,2,3,4 कविताएँ जहाँ समाज के विभिन्न वर्गों की आर्थिक स्थितियों और मनोवृत्तियों का चित्रण करती हैं वहीं पर बोधिसत्व की 'जोगी' कविता पालिस करने वाले बच्चों के हावो-भावों का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती है। ''वे जूतों की तलाश में/घूमते हैं ब्रश लेकर/और मिलते ही बिना देर लगाए/ब्रश को गज की तरह चलाने लगते हैं/जूतों पर/गोया जूते उनकी सारंगी हों। क्या दावे से कहा जा सकता है कि/उन्हें जूतों से प्यार है/जबकि फूल की तरह खिल उठते हैं/जूतों को देखकर वे?'' इसी प्रकार 'हम', 'और कहीं', 'उजड़ा हुआ दिन', 'मानबहादुर', 'चिट्ठी', 'प्लेटफार्म नं. चार', 'तुम्हारे पास' आदि कविताओं में कवि की प्रगतिशील चेतना के विविध रूप द्रष्टव्य हैं।

कवि ने यथावसर पत्नी के प्रति रोमानी भावों एवं घर-परिवार की सुखद कामना तथा माता-पिता, काकी-काका, बहन आदि के प्रति निजी अनुभूतियों का मार्मिक चित्रण किया है। बोधिसत्व की 'स्त्री', 'तुम्हारे पास', 'नहीं जान पाया', 'अंधी स्त्री', 'शृंगारदान में धूल', 'बाहर झांकती आँखें', 'उसे पता था', 'वह चाहती थी', 'घर में', 'बिना बताए', 'निरंजना के उस पार', 'माँ का नाच' आदि कविताओं में भीख माँगती स्त्री, आजीवन पुरुष के प्रति समर्पित नारी, दुखियारी अंधी स्त्री, मायका और ससुराल में जुल्मों की शिकार नारी, ढल रही ज़िन्दगी में भी सौन्दर्य को सँवारती हुई नारी, एक श्रमिक हलवाहे की पत्नी की वेदना, कमर झुकी एवं बिवाइयां फटी हुई माँ के नृत्य को विभिन्न भावबोधों और अर्थछवियों के साथ अभिव्यक्ति दी गई है—

वह नाचती रही बिलखते हुए
धरती के इस छोर से उस छोर तक
समुद्र की लहरों से लेकर जुते हुए खेत तक
सब भरे थे उसकी नाच की धमक से
सब में समाया था उसका बिलखता हुआ गाना।

बोधिसत्व के काव्य वैशिष्ट्य के संबंध में नंदकिशोर नवल का मत है—''शाब्दिक मितव्ययिता, वातावरण का निर्माण, एक गहरा विषाद और भाव-प्रसार की क्षमता। कभी-कभी वे इतने कम शब्दों का प्रयोग करते हैं कि वे 'अंडरटोन' के कवि प्रतीत होते हैं। अपनी कविताओं में उन्हें वातावरण बनाना पसंद है। उसकी सार्थकता इस बात में

है कि वे उसी के माध्यम से जो अनिर्वचनीय है,उसे भी कह डालते हैं। सुख और आनंद के क्षण भी बोधिसत्र में आते हैं, लेकिन विषाद जैसे उनका स्थायी भाव है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उस विषाद का संदर्भ सर्वथा सामाजिक अथवा एक विशेष अर्थ में 'आधुनिक' होता है।''

अंतिम दशक के दौर में जहाँ जीवन और साहित्य के क्षेत्र में बहुत सारे नवीन बदलाव हो रहे थे वहाँ नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल की ग्रामीणता और लोकजीवन की कविता के उभार और उत्तरोत्तर उसके विकास को देखा जा सकता है। इस दृष्टि से अष्टभुजा शुक्ल, बोधिसत्व, निलय उपाध्याय, एकांत श्रीवास्तव, मदन कश्यप आदि के नाम प्रमुख हैं। बोधिसत्व की कविताओं को पढ़ने से लगता है कि उनके अंदर दुःख का संसार व्याप्त है। कवि का दुःख घरेलू दुनिया से विकसित होकर सामूहिक दुनिया में बदल जाता है। इसमें गहरी उदासी, हताशा और निराशा भरी हुई है। ''मैं जानता हूँ/मेरे भाई परदेश में खटकर/सो रहे होंगे/जब मैं जल रहा होऊँगा/महुए के नीचे/किसी की सघन छाया में रात को।''

अरविन्द त्रिपाठी 'कविता का आज' लेख में लिखते हैं—''उल्लेखनीय बात यह है कि कसकते दुःखों के बावजूद कवि में जीव और समाज के साथ गहरा आशावाद समाया हुआ है और यह आशावाद ही युवा कविता की उपलब्धि है। बोधिसत्व ने अपने संग्रह का नाम 'हम जो नदियों का संगम हैं' रखा है। ये नदिया सुखों-उल्लासों का संगम नहीं हैं बल्कि ये नदियां दुःखों की नदियां हैं जो आपस में मिलकर सुखों का संगम विकसित करती हैं। दुख में सुख, निराशा में आशा, उदासी में उल्लास–यही जीवन की खोज है और कविता का अंतिम सच भी। जैसा कि कवि ने कहा है : ''हम जल रहे खेत हैं/भस्म हो चुके खलिहानों के लिए बेचैन...हम जो देश का विदीर्ण मन हैं आज/हम जो नदियों का संगम हैं फिर भी।''

बोधिसत्व का तीसरा काव्यसंग्रह 'दुःख-तंत्र' अंतिम दशक के बाद 2004 में प्रकाशित हुआ। दो खण्डों में विभाजित संग्रह की कविताएँ भी पहले की भाँति कवि के निजी जीवन के अनुभवों पर आधारित हैं। जिसमें उनका गाँव, इलाहाबाद, तिब्बत, माता-पिता, पत्नी, भाई की यादें एवं अन्य विविध प्रसंगों से जुड़ी हुई रचनाएँ संकलित हैं। इन कविताओं में कोई विशेष विचारधारा एवं समसामयिक परिवेशगत जीवन की हलचल नहीं है। ❐

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-403206